किशोर ग्रन्थमाला १४

कामेश्वरसिंह-दरभङ्गा सं० विश्वविद्यालयस्य शिक्षाशास्त्रिपरीक्षापाठ्यं

बालशिक्षा-सोपानम्

'बालबोधिनी' हिन्दी-व्याख्या-सहितम्

प्रणेता

महावैयाकरण पं० दीनबन्धु झा

कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

किशोर ग्रन्थमाला

१४

कामेश्वरसिंह-दरभङ्गा सं० विश्वविद्यालयस्य-शिक्षाशास्त्रिपरीक्षापाठ्यं

बालशिक्षा-सोपानम्

'बालबोधिनी' हिन्दी-व्याख्या-सहितम्

प्रणेता

महावैयाकरण पं० दीनबन्धु झा

व्याख्याकारः—

व्याकरण-साहित्याचार्य-विद्यावारिधि—

डॉ० श्रीशशिनाथ झा

कामेश्वरसिंह 'दरभंगा' संस्कृतविश्वविद्यालयप्राध्यापकः

कृष्णदास अकादमी, वाराणसी-२२१००१

१९८२

प्रणेता
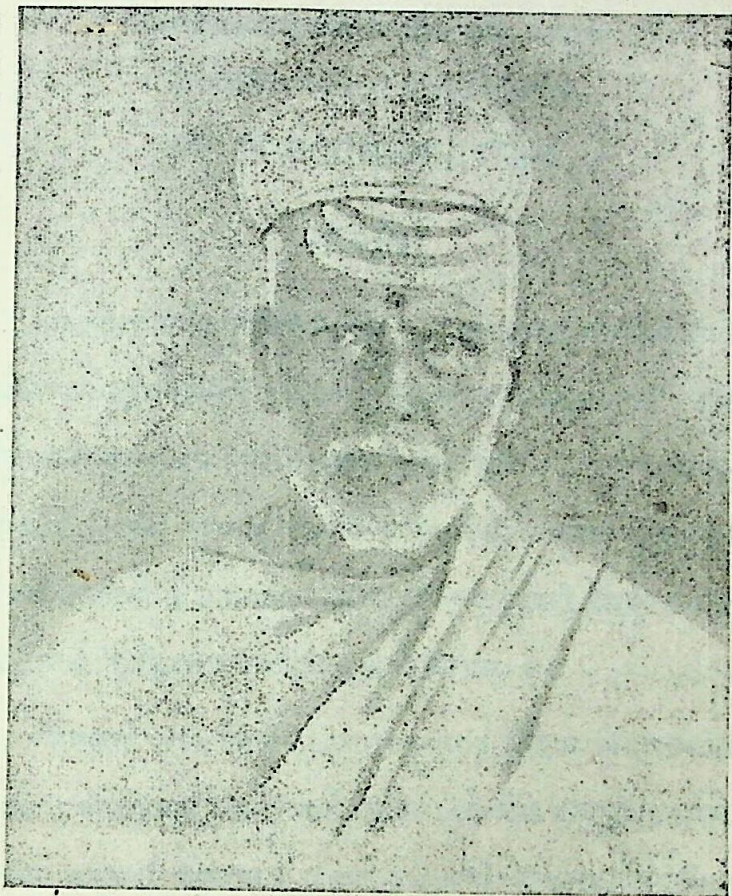
महावैयाकरण पं० दीनबन्धु झा

कामेश्वरसिंहदरभङ्गासंस्कृतविश्वविद्यालयीय-व्याकरण-

भाषाविज्ञानविभागाध्यक्षाणां पण्डितप्रवर-प्राचार्य-

डॉ० विधातामिश्रमहोदयानां

सम्मतिः

प्रातःस्मरणीयैर्महावैयाकरणचरणैः पञ्चपञ्चाशद्वर्षव्यापि-दीर्घ-कालाध्यापनानुभवानन्तरं १९५४ तमे क्रुष्टाब्दे 'बालशिक्षासोपानं' नाम शिशूनामध्ययनाध्यापने परमोपयोगि पुस्तकं प्रणीतम्। एतच्च शिक्षा-शास्त्रीयां परम्परां पोषयति, दर्शयति च शिक्षण-विधेः प्रशस्तं पन्थानम्। बालशिक्षणविधौ सोपानमिदम् आप्तजनप्रणीतत्वात् स्वतो वैज्ञानिकत्वाच्च प्रामाणिकं विद्वद्भिरादृतं स्यादिति दृढो मे विश्वासः।

व्याख्याता चास्य महावैयाकरणगुरुचरणानां दौहित्रो विद्यावारिधिः (डॉ०) श्रीशशिनाथ (झा) शर्मा स्फीतेन विवेचनेन ग्रन्थाशयप्रकाशने सर्वथा सफलतां प्राप्तवान्। अनया व्याख्यया ग्रन्थस्यास्योपयोगिता नितरां वर्द्धतेतरामिति बाढं विश्वसिति।

गुरुपूर्णिमा
वि० सं० २०३९

विधाता मिश्रः
६-६-'८२

विषयसूची

शुद्धिपत्रम्

अशुद्ध	शुद्ध	श्लोक
कंकी	ककी	५
जनकं	जनक	१०
बोधयेत्	बोधयेत	५५
लघ्वी	लघ्वीं	६७
रचना-	रचन-	८२
काङ्क्षतः	काङ्क्षतः	९०
नीयः	नीयाः	९७
सूर्खता	मूर्खता	११८
झाण्डर	माण्डर	पृ० ३२

॥ श्रीः ॥

बालशिक्षा-सोपानम्

'बालबोधिनी' व्याख्योपेतम्

अथ वर्णविचारः

मङ्गलाचरणम्—

प्रणम्य वाणीचरणौ चारुशिक्षाप्रवृत्तये ।
बालस्य शिक्षासोपानं क्रियते दीनबन्धुना ॥ १ ॥

देव नमन से ही भला, होता सुमति-विकास ।
'दीनबन्धु' पद ध्यान कर, करता हूँ कुछ आस ॥
करता हूँ कुछ आस, उन्हीं की कृपा निराली ।
सत्य हृदय से जो जाये लौटे ना खाली ॥
स्वस्थ चित्त हो अतः स्वमातामहकृत 'शिक्षा' ।
करता हूँ हिन्दी टीका-युत सौम्य समीक्षा ॥

श्री सरस्वती के चरणों में प्रणाम कर सुन्दर शिक्षा में प्रवृत्ति के लिए 'बालकों' के हेतु शिक्षा की सीढ़ी के स्वरूप 'बालशिक्षा-सोपान' नामक ग्रन्थ (महावैयाकरण) पं० दीनबन्धु झा बनाते हैं ॥१॥

स्वरा नव, व्यञ्जनानि त्रयस्त्रिंशत्तु संख्यया ।
अयोगवाहा विज्ञेयाश्चत्वारः संस्कृते स्थिताः ॥ २ ॥

संस्कृतभाषा में नौ वर्ण (अक्षर) स्वर कहलाते हैं । यथा—अ इ उ ऋ लृ ए ऐ ओ औ । तैंतीस वर्ण व्यञ्जन कहलाते हैं—क ख

ग घ ङ। च छ ज झ ञ। ट ठ ड ढ ण। त थ द ध न। प फ ब भ म। य र ल व श ष स ह। इन दोनों के अलावे चार वर्ण अयोगवाह कहलाते हैं। वे हैं—अनुस्वार-विसर्ग-जिह्वामूलीय-उपध्मानीय। उनमें अनुस्वारवर्ण स्वर से आगे ही रहता है। उसकी लिपि बिन्दुरूप (ं) होती है। विसर्ग भी स्वर से आगे ही बिंदुद्वयरूप (ः) होता है। ककार वा खकार से पूर्व रहने वाला विसर्ग जिह्वामूलीय ᳵ कहलाता है और पकार वा फकार से पूर्व का विसर्ग उपध्मानीय ᳶ कहलाता है। ये दोनों भी स्वर से आगे आगे ही रहते हैं॥ २॥

(यहाँ अनुनासिक (ँ) और चार 'यम' संज्ञक की गणना नहीं की गयी है। यम की गणना इसलिए नहीं की गयी है कि वह लौकिक संस्कृत में है ही नहीं। अनुनासिक को तो अनुस्वार का उपभेद मानकर ही उसका उल्लेख नहीं किया गया है। 'पाणिनीय शिक्षा' में भी अनुनासिक की गणना नहीं की गयी है) ॥२॥

वर्णान्तरं विनापि स्याद् यस्योच्चारणसम्भवः।
स स्वरः प्रतिपत्तव्योऽन्याधीनोच्चारणाः परे॥ ३॥

जिस वर्ण के उच्चारण में अन्य वर्ण की सहायता अपेक्षित नहीं हो उसे स्वर जानना और स्वर से भिन्न सभी वर्णों के उच्चारण अन्य वर्ण की सहायता से ही होता है। उनमें व्यञ्जनों के उच्चारण में पूर्व अथवा पर स्वर अपेक्षित होता है। अयोगवाह के उच्चारण में केवल पूर्वस्थित स्वर चाहिए॥ ३॥

सर्वे संकलिता वर्णाः षट्चत्वारिंशदेव तु।
तैरेव पदवाक्यानि जायन्ते सकलान्यपि॥ ४॥

(संस्कृत में) कुल मिलाकर ४६ वर्ण होते हैं। (स्वर ९+ व्यञ्जन ३३ + अयोगवाह ४=४६) उन्हीं से सभी पद और वाक्य बनते हैं॥ ४॥

ककारादिर्व्यञ्जनश्च स्वरेण परवर्त्तिना ।
मिलितं सत् कंकीत्यादि प्रभूतं जायतेऽक्षरम् ॥ ५ ॥

ककार-खकार-गकारादि सकल व्यञ्जन आगे के स्वर से मिलने पर क कि कु के कै को कौ (ह्रस्व दीर्घ भेद करने पर-क का कि की कु कू के कै को कौ [कं कः]) इस प्रकार बहुत से अक्षर हो जाते हैं। (इसी तरह ख खा खि खी···। ग गा गि गी··· ह हा हि ही इत्यादि) ॥ ५ ॥

वर्णमेवाऽक्षरं प्राज्ञैः पर्यायेण निगद्यते ।
'वर्णं वाऽऽहुः पूर्वसूत्रे' इति भाष्येऽभिधानतः ॥ ६ ॥

विद्वानों ने वर्ण को ही अक्षर का पर्यायवाची कहा है, क्योंकि महाभाष्यकार पतञ्जलि भी कहते हैं कि 'पूर्वसूत्र में (पाणिनि से प्राचीन व्याकरणों में) अक्षर को वर्ण कहा गया है ॥ ६ ॥

क्वचिदक्षरशब्देन स्वर एव तु गृह्यते ।
सव्यञ्जनोऽव्यञ्जनो वा द्व्यक्षरादिपदे यथा ॥ ७ ॥

कहीं कहीं पर अक्षर शब्द से स्वर ही समझा जाता है। व्यञ्जन सहित या व्यञ्जन रहित स्वर भी अक्षर माने जाते हैं। जैसे द्व्यक्षरपद (राम, श्याम आदि) ॥ ७ ॥

(गोविन्द, माधव आदि में स्वर की ही गणना होती है। छन्दःशास्त्र में स्वर को ही अक्षर कहा जाता है। अष्टाक्षरावृत्तिः, एकादशाक्षरावृत्तिः, इत्यादि में स्वर को ही गिनकर अक्षर कहते हैं। प्रातिशाख्य में स्वर को अक्षर कहकर आगे-पीछे के व्यञ्जन सहित को भी अक्षर कहा है, लेकिन स्वर के साथ उसी के अन्तर्गर्भित रूप से अक्षर कहायेंगे, अर्थात् गिनती स्वर की ही होगी। जैसे 'आत्' यहाँ तकारसहित आकार अक्षर हुआ। लेकिन यहाँ दो अक्षर हुए ऐसी बात नहीं। दोनों मिलितरूप से एक ही अक्षर हुए। वस्तुतः अर्धमात्रिक व्यञ्जन कण्ठ से आगे

मुख तक नहीं आ सकते। वे स्वर की सहायता से ही उच्चरित होते हैं। चाहे आगे या पीछे स्वर रहे तो व्यञ्जन का उच्चारण हो सकेगा। फलतः जिस स्वर के सहारे उच्चरित होंगे उसीके अङ्गरूप से अक्षर कहायेंगे।

व्याकरणशास्त्र में स्वर और व्यञ्जन दोनों को अक्षर कहा जाता है। राम पद में 'र् आ म् अ' ये चार अक्षर हैं)

स्वरहीनं व्यञ्जनञ्च पदस्यान्ते भवेत् परम्।
तस्याधस्तात् प्रदातव्या तिर्यग् रेखा प्रयत्नतः ॥ ८ ॥

बिना स्वर का व्यञ्जन यदि पद के अन्त में हो तो उसके नीचे टेढ़ी रेखा (हल् चिह्न-्) दे देना चाहिए। इस (्) चिह्न से शुद्ध व्यञ्जन ही समझा जायेगा। शुद्ध व्यञ्जन के आगे जो स्वर रखेंगे उससे वह युक्त हो जायगा। अर्थात् व्यञ्जन आगे के स्वर को निजी मानता है। वह उसी की मात्रा से युक्त होगा। यद्यपि पीछे के स्वर की सहायता (ऐसी स्थिति में) उसे लेनी पड़ती है फिर भी वह (व्यञ्जन) पीछे के स्वर में मिलता नहीं। जैसे-क् आ=का। किन्तु 'अक्' यहाँ स्वर के सहायक रहने पर भी क् स्वरवान् नहीं है ॥ ८ ॥

१. ("स्वरोऽक्षरम् सहाद्यैर्व्यञ्जनैः, उत्तरैश्चावसितैः"-शुक्ल-यजुःप्रातिशाख्यम् अध्याय-१, सूत्र ९९-१०१ ॥)

लिपिर्यद्यप्यक्षरस्य व्यञ्जिका व्यङ्ग्यमक्षरम्।
तथाप्यभेदाध्यासेन लिपिरप्यक्षरं मता ॥ ९ ॥

यद्यपि लिपि (अक्षर का लिखित रूप) अक्षर की व्यञ्जिका (प्रकाशिका) है और अक्षर व्यंग्य है (लिपि से प्रकाशित होता है), फिर भी (लिपि और अक्षर में) अभेद का आरोप करने से लिपि को भी अक्षर कहा जाता है। (महाभाष्यकार ने कहा है कि 'अक्षरं न क्षरं विद्यात्', अर्थात् अक्षर वह है जो कभी नष्ट नहीं होता। वह अकारादिरूप ज्ञानगम्य ही है। उस

ज्ञानगस्य वर्ण (अक्षर) को प्रकाशित करने के दो तरीके हैं—(१) उच्चारण करना, और (२) लिखना। इस प्रकार लिपि अक्षर को समझने का एक साधन है, लेकिन वह साधन अक्षर से इतना समीप है कि दोनों को एक-सा मानकर लोग लिपि को भी अक्षर ही कहने लगे और व्यवहार भी ऐसा ही है) ॥ ९ ॥

अतो देवाक्षरमिदमित्यादि सकलैर्जनैः ।
वर्णाभिव्यक्तिजनकं-लिपावपि निगद्यते ॥ १० ॥

इस लिए सभी लोग 'यह देवाक्षर (देवनागरी) है, यह वंगाक्षर है, यह मिथिलाक्षर है इत्यादि व्यवहार लिपि के लिए भी करते हैं, जो अक्षर को व्यक्त करने का साधन मात्र है। तत्त्व तो यह है कि यद्यपि लिपि अक्षर नहीं है, अपितु उसका एक साधन है, फिर भी 'मिथिलाक्षर' इत्यादि में लिपि के लिए अक्षर शब्द का व्यवहार देखकर उसको भी अक्षर ही कहा जाता है ॥ १० ॥

तां रेखां न प्रदद्याच्चेत् ककारादिलिपेरधः ।
ज्ञायेताऽसावकारेण युतस्तर्हिं न केवलः ॥ ११ ॥

क ख ग इत्यादि लिपि (व्यञ्जन) के नीचे यदि उक्त रेखा (हल् चिह्न) न लगाया जाय तो वह अकार युक्त जाना जायेगा, केवल व्यञ्जन नहीं। जैसे—क ख ग घ ङ इत्यादि। यदि हम हल् रेखा लगाते हैं तो केवल व्यञ्जन ही रहेगा—जैसे-क्। उक्त रेखा-शून्य 'क' में 'अ' भी है, अर्थात् क्+अ=क ॥ ११ ॥

पूर्वव्यंजनयुक्तस्तु स्वरो मात्रेति कथ्यते ।
तल्लिपेः कश्चिदेवांशो व्यञ्जने योज्यते यतः ॥ १२ ॥

पीछे के व्यञ्जन में (आगे से) जुड़ा हुआ स्वर मात्रा कहलाता है। क्योंकि वहां उस (स्वर) लिपि के कुछ ही अंश उस व्यञ्जन में लगाया जाता है। जैसे-'का', यहां क्+आ, पीछे का

व्यञ्जन क् से आगे आ है, वह क् में जुड़ने पर अपने लिपि के एक अंश (ा) रूप में ही रहता है, वह आकार की मात्रा कही जाती है। इसी प्रकार इ ई उ ऊ ऋ ॠ ए ऐ ओ औ के मात्रायें क्रमशः ये हैं—ि ी ु ू ृ ॄ े ै ो ौ ॥ १२ ॥

व्यञ्जनेन युतोऽकारो नांशेनापि विलिख्यते ।
तस्मान्न मात्रा नाम्नाऽसौ व्यवहारस्य गोचरः ॥ १३ ॥

व्यञ्जन से जुड़ा हुआ अकार का कोई भी अंश नहीं लिखा जाता, इसलिए उसे (अकार को) मात्रा कहे जाने का व्यवहार नहीं है। जैसे—क् + अ = क। यहां ककार में 'अलग से अकार का कोई भी अंश नहीं जोड़ा गया। अतः सभी स्वर की मात्रा होती है, किन्तु अकार की मात्रा नहीं होती ॥ १३ ॥

अनेकव्यञ्जनं श्लिष्टं ख्यातं संयोगसंज्ञकम् ।
संयुक्तशब्देनाप्येतत् कथितुं शक्यते जनैः ॥ १४ ॥

एक से अधिक व्यञ्जन यदि मिला (सटा) हुआ हो, तो उसे संयोग कहते हैं, इसे संयुक्त शब्द से भी कहा जा सकता है। दो या अधिक व्यञ्जन के बीच में यदि स्वर न रहे तो वे सभी वर्ण 'संयुक्तवर्ण' कहलाते हैं। जैसे—'अस्थि', यहाँ स् और थ के बीच में कोई स्वर नहीं है, अतः दोनों मिले हुए वर्ण संयोग हुए ॥१४॥

स्यात् संयोगे व्यञ्जनस्य सम्पूर्णा कस्यचिल्लिपिः ।
कस्याप्यर्धं तदर्धं वा लिपिं वीक्ष्य विभाव्यताम् ॥ १५ ॥

संयोग में (संयुक्त होने पर) किसी व्यञ्जन की पूरी लिपि, किसी की आधी, किसी की उससे भी आधी (लिपि) होती है, यह लिपि (के व्यवहार) को देखकर समझें। 'क्र' में 'क' की समूची और र की आधी लिपि है। 'श्च' में श की आधी और च की पूरी। 'र्क' में रेफ की लिपि अत्यन्त कम मात्रा में है। इस प्रकार अन्य भी जानना ॥ १५ ॥

अथ अक्षरारम्भविधिः

वालस्य पञ्चमे वर्षेऽक्षरारम्भो विधीयताम् ।
सरस्वत्यादि-देवीनां कृत्वा पूजां शुभे दिने ॥ १६ ॥

पाँचवें वर्ष में (जन्म से लेकर चार वर्ष बीत जाने पर) शुभ दिन में वालक का (कन्या का भी) अक्षरारम्भ (अक्षर लिखना प्रारम्भ) कराना चाहिए। उससे पूर्व उसी दिन श्री सरस्वती, दुर्गा, लक्ष्मी आदि देवियों की पूजा करनी चाहिए ॥ १६ ॥

अक्षराऽऽरम्भणे कार्ये प्रथमं लेखयेत् स्वरान् ।
ततः क-ख-ग-घेत्यादि व्यञ्जनं लेखयेद् गुरुः ॥ १७ ॥

जव अक्षरारम्भ होने लगे तो गुरु को चाहिए कि पहले बच्चों से स्वर वर्ण (अ आ इ ई इत्यादि) को लिखायें। फिर क ख ग घ इत्यादि व्यञ्जनों को लिखायें ॥ १७ ॥

तत्र मङ्गल-हेतोस्तु पुरस्तादङ्कुशं ततः ।
सिद्धिरस्त्विति संलेख्य लेखनीयाः स्वरादयः ॥ १८ ।

उस अवसर पर मङ्गल (शुभ) के लिए सबसे पहले 'अङ्कुश' का चिह्न लिखना चाहिए। इसके वाद 'सिद्धिरस्तु' लिखकर स्वर-व्यञ्जनवर्ण लिखना चाहिए ॥ १८ ॥

(अंकुश चिह्न गणेश जी का अस्त्र है। किसी कार्य के प्रारम्भ में मङ्गल के लिए सबसे पहले गणेश का नाम लिया जाता है। अतः इस अंकुश चिह्न से गणेश कीर्तन हुआ। अंकुश अनुशान का प्रतीक है। इससे उन्मत्त हाथी भी अनुशासित रहता है। बच्चे शिष्य होने जा रहे हैं अतः सर्वप्रथम इन्हें अनुशासित रहने की प्रतिज्ञा करनी चाहिए। यह अंकुश इसीका द्योतक (प्रकाशक)

है। आज भी मिथिला में यही व्यवहार है। मिथिलाक्षर (तिरहुता) के प्रकाशित वर्णमाला में सबसे पहले अंकुश ही दृष्टिगोचर होता है)॥

ॐ नमः सिद्धमिति यत् केचिन्मंगलहेतवे।
लेखयन्ति, न तद् युक्तं प्रणवाऽनधिकारतः ॥ १९ ॥

कोई-कोई (अक्षरारम्भकाल में) मङ्गल के लिए 'ॐ नमः सिद्धम् (बालक से) लिखाते हैं। किन्तु यह ठीक नहीं, क्यों कि अनुपनीत (विना उपनयन कराया हुआ) को प्रणव (ओंकार) में अधिकार ही नहीं है। अर्थात् वे ॐ के उच्चारण का अधिकारी नहीं हैं ॥ १९ ॥

('ॐ नमः सिद्धम्' यह जैनशाकटायन व्याकरण का प्रथम सूत्र है। प्रायः किसी जैन विद्वान् ने अक्षरारम्भ के अवसर पर मंगल के लिए इसे चला दिया। अशिक्षित समाज में इसका प्रचार होने लगा जो आज भ्रष्ट रूप में 'ओ ना मा सी धं' अर्ध-शिक्षित शिक्षक के बीच खूब प्रचलित है।)

स्वदेशाक्षरमेवादौ शिक्षयेत प्रयत्नतः।
परदेशलिपिं पश्चात्, शिक्षयेदिति मे मतिः ॥ २० ॥

पहले अपने देश की लिपि को यत्नपूर्वक सिखाना चाहिए। पीछे (स्वदेशीय लिपि में पटु हो जाने पर) अन्य देशों की लिपि भी सिखायें, ऐसा मेरा विचार है ॥ २० ॥

आनीय खटिकां किं वा कुलालकर-मृत्तिकाम्।
तयाऽश्मन्यथवा भूमौ लेखयेन्महतीं लिपिम् ॥ २१ ॥

खली या कुम्हार के यहाँ का मिट्टी (चिकनी मिटी के गोले) लाकर उससे पत्थल पर या भूमि (जमीन) पर (बच्चों से) बड़ी-बड़ी लिपि (अक्षर) लिखावें ॥ २१ ॥

Funding: Tattva Heritage Foundation,Kolkata. Digitization: eGangotri.

अक्षर-शिक्षा—

बालस्य दक्षिणं हस्तं गृहीत्वा दक्षपाणिना ।
तस्यां लिप्यां बालकेन पाठयन् लेखयेद् गुरुः ॥ २२ ॥

बालक के दाहिने हाथ को दाहिने हाथ से पकड़ कर उस (लिखी हुई) लिपि पर पढ़ाते हुए गुरु बालक से लिखावें ॥ २२ ॥

तावत्तत्रैव बालेन घर्षणं कारयेन्मुहुः ।
स्वातन्त्र्येण यथा यावल्लेखितुं न क्षमः शिशुः ॥ २३ ॥

तब तक उसी लिपि पर बालक से धीरे-धीरे खली घिसायें जब तक वह अपने से ही उस लिपि को लिखने में पटु न हो जाय ॥ २३ ॥

मङ्गलाक्षरमात्रन्तु प्रथमं खलु लेखयेत् ।
तथा तत्र दृढाभ्यासं कारयेत प्रयत्नतः ॥ २४ ॥

पहले केवल मंगलाक्षर (सिद्धिरस्तु) लिखावें और वहाँ यत्नपूर्वक अभ्यास करावें, जिससे पक्का याद हो जाय ॥ २४ ॥

यथाक्रमव्युत्क्रमाभ्यां स्थापयन्नङ्गुलिं लिखेत् ।
पठने न विलम्बेत स्वातन्त्र्येण च संलिखेत् ॥ २५ ॥

क्रमपूर्वक (अ आ इ ई इत्यादि) और क्रम को तोड़कर (उ आ ए अ इत्यादि) (खलीपर) अंगुली को बैठाते हुए लिखे। लिखते समय पढ़ने में देरी न करे, अर्थात् जिस अक्षर को लिखे उसका उच्चारण भी उसी समय करता जाय। इस प्रकार स्वतन्त्रतापूर्वक (नकल न करता हुआ) भी लिखे ॥ २५ ॥

एवं स्वरं व्यञ्जनं च स्वल्पं स्वल्पं विलेखयेत् ।
सति तत्र दृढाभ्यासे परीक्ष्य खलु नैकधा ॥२६॥
मात्राशून्यानि नामानि ग्रामाँश्चोल्लिख्य वाचयेत् ।

इस प्रकार स्वर और व्यञ्जन को थोड़ा-थोड़ा लिखावें, अर्थात् एक ही दिन ज्यादा न लिखावें। जब सभी अक्षर अच्छी तरह अभ्यास हो जाय तो बार-बार परीक्षा लेकर मात्रा से हीन (बिना मात्रा के) नाम और गाँव लिखाकर पढ़ावें ॥ २६½ ॥

(मात्रारहित नाम जैसे—मदन, रमण, कमल, कलम इत्यादि। मात्राशून्य गाँव जैसे—खड़रख, कटक, लखनऊ, इत्यादि।)

ततः क का कि की के कै को कौ कं क इति क्रमात् ॥२७॥
मात्रया सहितान् वर्णान् शिशुना लेखयेद् गुरुः।
तूष्णीं न विलिखेद् बालो लेख्यवर्णं गदन् लिखेत् ॥२८॥

इसके बाद क का कि की (कु कू) के कै को कौ कं कः इस तरीके से मात्रा लगाकर गुरु बच्चों से अक्षर (व्यञ्जन) लिखावें। यथा—ख खा खि खी......च चा चि ची इत्यादि। बालकों को चुपचाप नहीं लिखना चाहिए, वह जिस वर्ण को लिखे, उसका उच्चारण भी करता जाये ॥ २७-२८ ॥

(बालक पद को यहाँ सर्वत्र कन्या का भी उपलक्षण मानें)

स्वयं विलिखितान् वर्णान् पठितुं यदि बालकः।
न क्षमस्तर्हि स गुरोर्दोषो, न तु शिशोरसौ ॥ २९ ॥

यदि बालक अपने हाथ से लिखे वर्णों को खुद न पढ़ सके तो यह गुरु का दोष है, न कि उस बालक का ॥ २९ ॥

मात्रा-शिक्षा—

तत्तद् वर्णं देशभाषा-मात्रसंज्ञोक्तिपूर्वकम्।
उच्चारयेत मात्राणां शिक्षणे शिशुना गुरुः ॥ ३० ॥

मात्रा सिखाने के समय गुरु बालक से केवल देशी भाषा में आने वाले संज्ञाओं को दिखाकर (उनमें जो वर्ण हों) उनका (स्पष्ट) उच्चारण करावें ॥ ३० ॥

उक्तरीत्या समात्राणां व्यञ्जनानां सुशिक्षणे ।
ऋकारमात्रयोपेतान् कादीन् शिक्षेत बालकः ॥ ३१ ॥

पूर्वोक्त रीति से मात्रा सहित व्यञ्जनों की शिक्षा के समय बालक ऋकार के मात्रा (ृ) से युक्त क ख ग आदि व्यञ्जनों को सीखे ॥ ३१ ॥

संयुक्ताक्षर-शिक्षा—

ततः संयोगसंज्ञानामक्षराणां विलेखनम् ।
कारयेत यथायोग्यमक्षरे पटुतां नयन् ॥ ३२ ॥

इसके बाद लड़के को योग्यता के अनुसार अक्षर लिखने में कुशल बनाते हुए संयुक्ताक्षर लिखाना चाहिए ॥ ३२ ॥

क्रमशो लेखाधार-परिवर्तनम्—

लेखयेत् प्रथमं शुष्क-मृत्पिण्डेन धरोपरि ।
ततो दारुमये पट्टे लेखन्यादाय मृण्मसीम् ॥ ३३ ॥

पहले तो सूखे मिट्टी के गोले से समतल भूमि पर ही (बालक से) लिखावें, फिर लकड़ी की बनी पाटी पर मिट्टी से बनी-स्याही और कलम लेकर लिखावें ॥ ३३ ॥

तत्र लेखपटुत्वे च मस्या पत्रे स्फुटाक्षरम् ।
क्रमेण लघुतां नीतमसंमिश्रं प्रयत्नतः ॥ ३४ ॥

पाटी पर लिखने में निपुण हो जाने पर स्याही (काली, नीली इत्यादि) लेकर कागज पर बिलगाकर (सटाकर नहीं) अक्षर लिखें । पहले बड़े फिर धीरे-धीरे छोटे अक्षर यत्नपूर्वक लिखें जो एकदम मिला हुआ न हो, अर्थात् उचित दूरी पर हो ॥ ३४ ॥

शोभनलिपि-शिक्षा—

द्विजिह्वां लेखनीं सम्यक् स्वयं निर्माय यत्नतः ।
तया पत्रे लिखितव्यं यथा चार्वक्षरं भवेत् ॥ ३५ ॥

दो जीभवाली कलम यत्नपूर्वक अपने से बनाकर उससे कागज पर लिखना चाहिए, जिससे सुन्दर अक्षर हों ॥ ३५ ॥

(लकड़ी का या बांस की शाखा (करची) की कलम बनाकर उसके नोंक को दो भाग इस प्रकार करें जिससे एक ही बार में दो लकीर न बने।)

चारुलेखानुकारेण कुर्वन् यत्नं मुहुर्मुहुः।
चित्रकार इवाऽभ्यासान्नैपुण्यं प्रतिपद्यते। ३६ ॥

सुन्दर लेख के अनुकरण (नकल) करने से बार-बार यत्न करता हुआ बालक अभ्यास से चित्रकार की तरह कुशलता प्राप्त कर लेता है ॥ ३६ ॥

लौहमय्या तु लेखन्या विलिखन्नपि यत्नतः।
नातीव सुन्दरं लेखं कर्तुं शक्नोति बालकः ॥ ३७ ॥

लोहा से बनी कलम (फाऊन्टेन पेन) लेकर यत्नपूर्वक लिखता हुआ भी बालक खूब सुन्दर अक्षर नहीं लिख सकता है। इसलिए बालक को फाउन्टेनपेन से नहीं लिखना चाहिए ॥ ३७ ॥

समानि समशीर्षाणि ऋजुपंक्तीनि यत्नतः।
अक्षराणि विलिख्येरन् प्रविभक्तपदानि च ॥ ३८ ॥

सभी अक्षरों को यत्नपूर्वक बराबर लिखें। अक्षर के ऊपर की रेखा भी बराबर हो, पंक्ति सीधी हो और प्रत्येक शब्द को अलग-अलग लिखें ॥ ३८ ॥

पंक्तेः सरलताहेतोर्लेखा कार्या न पत्रके।
विनैव तां यतोऽभ्यासात् स्वतः पंक्तिर्भवेदृजुः ॥ ३९ ॥

पंक्ति के सीधे होने के लिए कागज पर रेखा मत खींचें, क्योंकि उसके बिना ही अभ्यास से आपही आप पंक्ति सीधी हो जायगी ॥ ३९ ॥

देशे यावति वर्णानां लिखितानां स्थितिर्भवेत् ।
तावत् स्थानं परित्यज्य पंक्तिमन्यामधो लिखेत् ॥ ४० ॥

देश में लिखित वर्णों की स्थिति (स्थान) जितनी हो, नीचे उतनी ही जगह छोड़कर दूसरी पंक्ति लिखें ॥ ४० ॥

मध्ये तदधिकस्थान-परित्यागस्तु मूर्खता ।
अयथोचितदूरत्वाः शोभन्ते हि न पंक्तयः ॥ ४१ ॥

दोनों पंक्ति के बीच में उससे अधिक जगह छोड़ना मूर्खता है, क्योंकि उचित से अधिक या कम दूरी रहने पर पंक्तियाँ अच्छी नहीं लगतीं ॥ ४१ ॥

अक्षरभेद-ज्ञानम्—

ब-वयोः श-ष-सानां च तथैव ह्रस्व-दीर्घयोः ।
उच्चारणे विभेदस्य यथा वेत्ता भवेच्छिशुः ॥ ४२ ॥
तथा प्रयत्नः कर्तव्यो गुरुणा सपरीक्षणः ।
तावन्न पाठयेत् कोषं यावद् वर्णेष्वपाटवम् ॥ ४३ ॥

ब और व के, श, ष और स के तथा ह्रस्व और दीर्घ के उच्चारण में जो (बहुत थोड़ा) भेद है। उसको जिस तरह बालक जान जाय, ऐसा प्रयत्न परीक्षा ले ले कर गुरु को करना चाहिए। और तब तक कोष (अमरकोष) नहीं पढ़ाना चाहिए, जब तक अक्षर लिखने-पढ़ने में पूर्ण निपुण न हो जाय ॥ ४२-४३ ॥

ह्रस्वदीर्घ-ज्ञानपरीक्षा—

श्रुत्वा गुरोर्मुखाद् बालो 'लिख्व—दीधितिदीपिनीम्' ।
यदि सम्यक् प्रविलिखेत् ज्ञेयो ह्रस्वादिबोधभाक् ॥४४॥

'ऐ लड़के ! लिखो—दीधितिदीपिनी' ऐसा गुरु के मुख से सुनकर बालक यदि शुद्ध-शुद्ध लिख ले, तो उसे ह्रस्व-दीर्घ का ज्ञाता समझ लें ॥ ४४ ॥

यदि वा लिखितं दृष्ट्वा सम्यग्घ्रस्वादिकं पठेत् ।
तदा ज्ञेयमयं बालो ह्रस्वादि-ज्ञानवानिति ॥ ४५ ॥

अथवा यदि लिखे हुए अक्षरों को देखकर ठीक-ठीक ह्रस्व-दीर्घ का उच्चारण करे तो समझें कि यह बालक ह्रस्व-दीर्घ का ज्ञाता हो गया है ॥ ४५ ॥

बालशिक्षायां गुरोः प्रयत्नः—

अद्यत्वे हीनसंस्कारा द्विजन्मानो भवन्ति यत् ।
तदेषां शिक्षणे भूयान् प्रयत्नः समपेक्षितः ॥ ४६ ॥

आज कल द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य) लोग संस्कार से हीन हो रहे हैं (अपनी तेज बुद्धि को खो रहे हैं), इस लिए उनके पढ़ाने में गुरु को 'और अधिक' परिश्रम करना चाहिए ॥ ४६ ॥
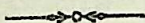
अथ अमरकोषाध्ययनशिक्षा

स्वयमेकैकवर्णानां पठने निपुणः शिशुः ।
प्रारभेताऽमरकृतं कोषं शुभ-मुहुर्तके ॥ ४७ ॥

जब बालक खुद ही (विना किसी के बताने से) एक एक अक्षरों को (सभी अक्षरों को, संयुक्ताक्षरों को भी) पढ़ने में कुशल हो जाय तो शुभ समय में अमर सिंह का बनाया हुआ कोष (अमरकोष) प्रारम्भ करे ॥ ४७ ॥

स हि प्रसिद्ध-संज्ञानां लिङ्गानां चानुशासनम् ।
अन्यो न तादृशः कोषो बालानामुपकारकः ॥ ४८ ॥

वह कोष (अमरकोष) प्रसिद्ध संज्ञाओं का (संस्कृत के शब्दों का) और लिङ्गों का (कौन शब्द किस लिङ्ग में प्रयुक्त होता है इसका) अनुशासन (शास्त्र) है। इस प्रकार का दूसरा कोई कोष बालकों का उपकारक नहीं है ॥ ४८ ॥

द्वि-त्राहेष्वेकमेकन्तु कोषश्लोकं पठेच्छिशुः ।
ततो द्वौ द्वौ ततस्त्रींस्त्रीनित्येवं वर्धयेत् क्रमात् ॥ ४९ ॥

प्रारम्भ में बालक दो-तीन दिनों तक प्रतिदिन कोष के एक-एक श्लोक को ही पढ़े, तब प्रतिदिन दो दो, फिर तीन-तीन इस प्रकार धीरे-धीरे बढ़ाता जाय, जितना तक वह सम्हाल सके ॥ ४९ ॥

अमरकोष-पाठक्रमः—

असकृद् गुरुणा प्रोक्तमक्षराज्ञानपूर्वकम् ।
यद्यभ्यस्येत्तर्हि न स्यात् पठने निपुणः शिशुः ॥ ५० ॥

अक्षरों को अच्छी तरह न जानता हुआ बालक गुरु के अनेक बार रटाने पर यदि कोष का अभ्यास करे तो वह पढ़ने में पटु कभी नहीं हो सकता ॥ ५० ॥

तस्मात्-शिक्षा तथा कार्या यथा बालः स्वयं पठेत् ।
अनुक्तमेव गुरुणा कोषं विगतकल्मषम् ॥५१॥

अतः ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जिससे बालक खुद, बिना गुरु के रटाने से ही कोष को शुद्ध-शुद्ध पढ़ सके ॥ ५१ ॥

स्वयं पठन्नेकमेकमक्षरं शश्वदर्भकः ।
अचिरेण श्लोकपादमध्येतुं शक्यते स्वतः ॥ ५२ ॥

अपने से एक-एक अक्षर को हमेशा पढ़ता हुआ बालक थोड़े ही दिनों में खुद ही श्लोक के चरणों को पढ़ सकता है ॥ ५२ ॥

अभ्यस्ते चैकचरणे तथैव चरणान्तरम् ।
समभ्यस्य द्वयोः कुर्यात् पदयोः पठनं सह ॥ ५३ ॥

श्लोक के एक चरण का अभ्यास हो जाने पर दूसरा चरण अभ्यास करना चाहिए और उसके भी अभ्यास हो जाने पर दोनों अभ्यस्त चरणों को एक ही बार में पढ़-पढ़ कर अभ्यास करना चाहिए ॥ ५३ ॥

कोषशिक्षायां गुरोः कर्तव्यम्—

एवं स्वयमधीयानो बालको धृतपुस्तकः ।
अध्यापने गुरोर्यत्नं न भूयांसमपेक्षते ॥ ५४ ॥

इस तरह हाथ में पुस्तक लेकर अपने से पढ़ते हुए बालक को पढ़ाने में गुरु को अधिक यत्न करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। यानी वह लड़का गुरु से अधिक मदद की अपेक्षा नहीं रखता है ॥ ५४ ॥

बालेन वाठ्यमानानि शृणुयात् केवलं गुरुः ।
यत्र स्यात् स्खलनं तत्र बोधयेत् यथोचितम् ॥ ५५ ॥

बालक से पढ़े जाते हुए अंशों को गुरु केवल सुनते जायँ एवं जहाँ पर गलती हो वहाँ ठीक-ठीक समझाते भी जायँ ॥ ५५ ॥

पदच्छेदे गुरुत्वे वा संयुक्तात् पूर्ववर्त्तिनः ।
अन्यथात्वं यदि भवेत् तदा तद् बोधयेद् गुरुः ॥ ५६ ।

पद (श्लोक के चरण) को फुटाने में या संयुक्त अक्षर से पहले के स्वर को गुरु करने में अगर उल्टा हो जाय तो गुरु धीरे से समझा दें (न कि डाँटें) ॥ ५६ ॥

(जैसे—यस्य ज्ञान-दया-सिन्धो । रगाधस्यानघा गुणाः ।
सेव्यतामक्षयो धीराः । स श्रिये चामृताय च ॥

एक श्लोक के ये चारों चरण हुए । यहाँ पहले चरण को यदि 'यस्य ज्ञान-दया सिन्धोर' इस प्रकार पढ़ें तो पदच्छेद सम्बन्धी अशुद्धि हुई । यहीं पर 'ज्ञान' शब्द मे 'ज्ञ' (ज्+ञ) संयुक्ताक्षर है । अतः उससे पूर्व 'य' में अकार का उच्चारण गुरु होता है । अर्थात् उस 'अ' पर बल पड़ेगा । यदि बालक हल्का उच्चारण कर दे तो उसे समझायें कि संयुक्त अक्षर से पहले के स्वर पर जोर देना चाहिए) ॥

सहस्रावर्त्तने यस्मान्न कदापि हि विस्मृतिः ।
तस्मादावर्त्तयेन्नित्यं पठितं ग्रन्थमादरात् ॥ ५७ ॥

(बालक जिस पंक्ति को) हजार बार आवृत्ति कर लेंगे उसे कभी नहीं भूल सकते, इस लिए पढ़े हुए ग्रन्थ की आवृत्ति आदर पूर्वक प्रतिदिन (बालक से) करानी चाहिए ॥ ५७ ॥

ग्रन्थावृत्ति-प्रकार—

यावदल्पमधीतं स्यात् तावन्नित्यं समग्रतः ।
अधिके पठिते कुर्यादावृत्तिं खण्डशः शिशुः ॥ ५८ ॥

जब तक ग्रन्थ कम पढ़ा हुआ हो तब तक तो सम्पूर्ण पठित भाग की और अधिक पढ़ जाने पर ग्रन्थ को अनेक हिस्सों में बांटकर प्रतिदिन आवृत्ति करनी चाहिए ॥ ५८ ॥

मौनमाश्रित्य नो कार्योऽभ्यासो वाऽऽवृत्तिरेव वा ।
सुस्पष्टश्रुतियोग्यं हि पठन् निपुणतां व्रजेत् ॥५९॥

मन हीं मन (चुप होकर) न तो अभ्यास करे और न आवृत्ति ही। साफ-साफ सुनने योग्य पाठ पढ़ता हुआ बालक योग्य हो जाता है ॥ ५९ ॥

कश्चिदध्ययने कालं नियतं परिकल्पयेत् ।
बालस्य कञ्चनोल्लेखे कञ्चनावर्त्तने तथा ॥ ६० ॥

गुरु को चाहिए कि बालक को कुछ समय पढ़ने में, कुछ लिखने में और कुछ आवृत्ति करने में निश्चित कर दें ॥ ६० ॥

कोषाध्ययननिर्देशः—

इत्यादीन्येतदन्तानि नामानि परमेष्ठिनः ।
एतानि विष्णोर्नामानि संज्ञा एतास्तु धूर्जटेः ॥ ६१ ॥
एवमेव दिगादेश्च पृथिव्यादेश्च वस्तुनः ।
भूयसी यस्य संज्ञास्ति तस्य नामानि बोधयेत् ॥ ६२ ॥

यहाँ से यहाँ तक ('ब्रह्मात्मभूः सुरज्येष्ठः' से 'सत्यको हंसवाहनः' तक) ब्रह्मा के नाम हैं, ये विष्णु के नाम हैं, ये महादेव के नाम हैं, इसी प्रकार दिशा, पृथिवी इत्यादि वस्तुओं की संज्ञाएँ एवं जिनके पर्यायवाची बहुत हैं (जैसे—सूर्य) उनके नाम समझा दें ॥ ६१–६२ ॥

कोष-परीक्षणम्—

पृथिव्याः कानि नामानि, शैलनामानि कानि च ।
'विष्णुर्नारायणः कृष्ण' इत्यस्मात् पूर्वमस्ति किम् ॥ ६३ ॥

इत्थं पृष्टो झटित्येव प्रदद्यादुत्तरं यदि ।
तदोत्तीर्णः परिज्ञेयः शिष्यः कोषपरीक्षणे ॥ ६४ ॥

पृथिवी के कौन-कौन नाम हैं ? और पर्वत के कौन-कौन से नाम हैं ? 'विष्णुनारायणः कृष्णः' इससे पहले क्या है ? ऐसा पूछने पर यदि (बालक) तुरत ही उत्तर दे दे तो उस शिष्य को कोष की परीक्षा में उत्तीर्ण समझें ॥ ६३–६४ ॥

कोषमाध्यमेन व्याकरणज्ञानम्—

जाते विभक्तिविज्ञाने व्याकृतेः परिशीलनात् ।
सर्वाः संज्ञा बोधयेत व्यपनीतविभक्तिकाः ॥ ६५ ॥

व्याकरण पढ़ने के बाद विभक्तियों का (प्रथमा, द्वितीया, तृतीया इत्यादि का) ज्ञान हो जाने पर सभी संज्ञाओं (शब्दों) में विभक्ति लगा-लगाकर समझा दें ॥ ६५ ॥

विभक्ति-विज्ञानवता तत्तत् कार्यं विजानता ।
नाम्नां स्वरूपविज्ञानं कोषस्य सुकरं भवेत् ॥ ६६ ॥

विभक्तियों को ठीक-ठीक जानते हुए और तत्प्रयुक्त (विभक्तियों के लगने से) होने वाले विशेष-विशेष (खास-खास) विधियों (नियमों) को जानते हुए बालक को कोष में पढ़े हुए नामों के रूपों (शब्दरूपों) को जानने में सुविधा होगी ॥ ६६ ॥
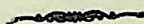
अथ व्याकरण-शिक्षा

तत्र शिक्षाकालः—

कृतोपनयनो बालोऽधीत्य सन्ध्यादिकं विधिम् ।
लब्ध्वा व्याकृतिमध्येतुं प्रारभेत शुभे दिने ॥ ६७ ॥

उपनयन (जनेऊ) होने के बाद बालक सन्ध्यावन्दन, देवपूजा इत्यादि कर्मों को याद कर गुरु से व्याकरण शास्त्र पढ़ना आरम्भ करे ॥ ६७ ॥

न चोपनयनात् पूर्वं पाणिनीयं शिशुः पठेत् ।
तथैव मैथिलानां हि व्यवहारो मनीषिणाम् ॥ ६८ ॥

उपनयन से पूर्व बालक पाणिनीय (पाणिनि का बनाया हुआ) व्याकरण नहीं पढ़े । मैथिल विद्वानों का व्यवहार भी वैसा ही देखा जाता है ॥ ६८ ॥

(उपनयन से पूर्व केवल कोष रटाया जाता है । पाणिनीय से भिन्न सारस्वत आदि उपनयन से पूर्व भी पढ़ सकते हैं ।)

यतो वर्णसमाम्नायो वेद एवेति निश्चितम् ।
छन्दोवत् खलु सूत्राणि भवन्तीत्यवदन्मुनिः ॥ ६९ ॥

क्योंकि वर्णसमाम्नाय (पाणिनीय व्याकरण के आदि में स्थित अक्षर समुदायरूप चतुर्दश माहेश्वरसूत्र अइउण् ऋलृक् इत्यादि) निश्चितरूप से वेद ही हैं और मुनि पतञ्जलि ने भी कहा है— 'छन्दोवत् सूत्राणि भवन्ति' = सूत्र (पाणिनीय) वेदतुल्य हैं ॥६९॥

(आम्नाय या समाम्नाय वेद को कहते हैं । अतः वर्णसमाम्नाय का अर्थ हुआ—'अक्षर-वेद' अनुपनीत को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है ।)

मातृभाषयैव सूत्रादीन् बोधयेत्—

सूत्राणां वार्तिकानां च पदच्छेदोक्तिपूर्वकम् ।
अध्यापयेत वृत्तीनामर्थं मातृगिरा गदन् ॥ ७० ॥

सूत्रों और वार्त्तिकों का पदच्छेद कहकर (पद फुटा-फुटा कर) उनके वृत्तियों के अर्थ मातृभाषा में बतलाते हुए पढ़ावें ॥ ७० ॥

(सूत्र मूलरूप में व्याकरणशास्त्र है जो पाणिनिकृत है। वार्त्तिक सूत्र का ही पूरक है जो कात्यायन या वररुचि का रचा हुआ है। वृत्ति सूत्रों तथा वार्त्तिकों का स्वरूप शब्दों में स्पष्ट अर्थ बतलाता है जो वामन, जयादित्य, भट्टोजिदीक्षित इत्यादि का बनाया हुआ है) ॥

प्रतिप्रकरणान्ते परीक्षा—

यदा त्वेकं प्रकरणमधीतं स्यात् तदा गुरुः ।
तस्मिन् प्रकरणे पृच्छेत् विषयान् व्युत्क्रमेण तु ॥ ७१ ॥

जब एक प्रकरण पढ़ा हो जाय तो गुरु उस प्रकरण में जहाँ तहां क्रमभंग करके विषय (बालक से) पूछें ॥ ७१ ॥

यावत् प्रश्नस्य सर्वस्य कुर्वीत नोत्तरं शिशुः ।
तावत्तत्रैव भूयोऽपि व्यवसायं प्रकारयेत् ॥ ७२ ॥

जब तक बालक उन सभी प्रश्नों का उत्तर न दे दे तब तक उसी प्रकरण में फिर फिर मिहनत कराना चाहिए ॥ ७२ ॥

अध्यापने शीघ्रतानिषेधः—

यद्यप्यादौ विलम्बः स्यादेवं सम्यक् प्रपाठने ।
तथापि न त्वरा कार्या, सा हि मूर्खत्वकारणम् ॥ ७३ ॥

यद्यपि इस प्रकार अच्छी तरह पढ़ाने से प्रारम्भ में देर लगेगा, फिर भी इसमें जल्दबाजी मत करें, क्योंकि यह (जल्दबाजी) मूर्खता का कारण होती है ॥ ७३ ॥

शिक्षाप्रदानप्रकारः—

विना पुस्तकमावृत्तिं यथा कर्तुं क्षमो भवेत् ।
तथा ग्रन्थस्य बालेन कार्यमभ्यसनं चिरम् ॥ ७४ ॥

जिससे बिना किताब देखे आवृत्ति कर सके इस तरह बालक से ग्रन्थ का अभ्यास देर तक कराता रहना चाहिए ॥ ७४ ॥

अभ्यस्यन् भूरिकालेन कश्चिद् धारयते हृदि ।
कश्चित् स्वल्पेन कालेन कश्चित् स्वल्पतरेण च ॥ ७५ ॥

किसी को ज्यादे समय तक अभ्यास करने से विषय हृदयङ्गम (ठीक से मालूम) होता है, किसी को कम समय में और किसी को उससे भी कम समय में (पाठ याद होता है) ॥ ७५ ॥

यथा यस्य हि संस्कारस्तथा भवति धारणा ।
तस्मान्न बालकाः सर्वे समानं पठितुं क्षमाः ॥ ७६ ॥

जिसका जैसा संस्कार (बुद्धि में विषय को ग्रहण करने की शक्ति) रहता है वैसी धारणा (विषय ग्रहण) होती है। इसलिए सभी बालक समानरूप से नहीं पढ़ सकते हैं ॥ ७६ ॥

अतः शास्त्रमधीयानः संस्कारौज्ज्वल्य-हेतवे ।
सम्यक् सहस्रधा नित्यं गायत्रीं प्रजपेद् द्विजः ॥ ७७ ॥

अतः शास्त्र पढ़ता हुआ द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य) संस्कार को तेज बनाने के लिए प्रतिदिन विधिपूर्वक हजार बार गायत्रीमन्त्र का जप करें ॥ ७७ ॥

एकैक-सन्धिशास्त्रस्य कार्यं लक्ष्येषु भूरिषु ।
कारयेद् येन सुकरं सर्वलक्ष्येषु तद् भवेत् ॥ ७८ ॥

एक-एक सन्धि के नियमों (सूत्रों) का कार्य अनेकों प्रयोगों पर दिखायें, जिससे सभी प्रयोगों में उसका उपयोग सुगमता से

हो सके। (जैसे—'इको यणचि' इस सन्धिशास्त्र का लक्ष्य 'यद्यपि, स्वागत, धात्रंश' इत्यादि पर क्या कार्य होता है, इत्यादि समझाकर प्रचुर उदाहरण दिखायें) ॥ ७८ ॥

> प्रत्येकसन्धिकार्याणां पाटवे सति बालकम् ।
> बाध्य-बाधकशास्त्राणां विषयान् प्रतिपादयेत् ॥ ७९ ॥

बालक को जब सभी सन्धिकार्यों में दक्षता प्राप्त हो जाय तो बाध्य (बाधक शास्त्र से अधिक उदाहरण वाला) और बाधक (बाध्य शास्त्र के कुछ ही क्षेत्रों को दखल करने वाला) शास्त्रों के विषयों को बतलावें। (बाध्य, जैसे—इको यणचि। बाधक, जैसे—अकः सवर्णे दीर्घः। श्री+ईशः' यहां 'इको यणचि', 'अकः सवर्णे दीर्घः' से बाधित हो गया क्योंकि वह 'यद्यपि' इत्यादि में चरितार्थ है। जिसका अन्य उदाहरण नहीं मिले वह अपवाद या बाधक हो जाता है, अतः 'अकः सवर्णे दीर्घः' के इ उ ऋ वाले स्थल पर सर्वत्र यण्शास्त्र की प्राप्ति रहने के कारण दीर्घ शास्त्र बाधक हो गया) ॥ ७९ ॥

अथ विद्यार्थि-शिक्षासूत्राणि

सन्धिकार्य-परीक्षायां पृच्छेत् सन्धिक्रियां तथा ।
सन्धिविच्छेदनं सन्धि-कार्याणां चाऽनुशासनम् ॥ ८० ॥

सन्धि (वर्णों के मेल) की परीक्षा में इन विषयों को बालक से पूछें—(१) सन्धिक्रिया (सन्धि किस प्रकार होती है), (२) सन्धिविच्छेद (उपेन्द्र के सन्धिविच्छेद करने से उप + इन्द्र) और (३) सन्धि करने का सूत्र ॥ ८० ॥

शब्दशास्त्रपरीक्षायां प्रष्टव्या विषया अमी ।
सन्धिकार्यं, नामरूपं, धातुरूपं च साधनम् ॥८१॥
व्याख्या सूत्रस्य चाभ्यासः, वाच्यस्य परिवर्त्तनम् ।
स्वतन्त्रवाक्यरचना-मनुवादादिकं तथा ॥८२॥

शब्दशास्त्र (व्याकरण) की परीक्षा में विषय पूछे जाने चाहिए—(१) सन्धि की विधि, (२) शब्दरूप, (३) धातुरूप, (४) उन रूपों की साधनिका, (सिद्ध करने की विधि), (५) सूत्रों की व्याख्या, (६) सूत्रों का कण्ठस्थीकरण, (७) वाच्यपरिवर्त्तन, (८) अपने मन से वाक्य बनाना (स्वतन्त्ररूप से कुछ पंक्तियाँ संस्कृत में लिखना) और (९) अनुवाद करना (संस्कृत से हिन्दी या हिन्दी से संस्कृत इत्यादि) ॥ ८१–८२ ॥

परीक्षा च द्विधा ग्राह्या लेखेन च मुखेन च ।
उभाभ्यां सम्यगुत्तीर्णश्छात्रो याति समुन्नतिम् ॥ ८३ ॥

परीक्षा दो तरह से लेनी चाहिए—(१) लैखिकी और (२ , मौखिकी । दोनों से उत्तीर्ण छात्र उन्नति करता है ॥ ८३ ॥

पृष्टः सन् गुरुणा भूयः सर्वप्रश्नोत्तरं यदि ।
करोति तर्हि तं छात्रं समुत्तीर्णमुदाहरेत् ॥ ८४ ॥

गुरु से बहुत प्रश्न पूछे जाने पर यदि सभी प्रश्नों का उत्तर दे दे तो उस छात्र को उत्तम रीति से उत्तीर्ण घोषित करें ॥ ८४ ॥

प्रश्नेष्वष्टासु केषाञ्चित् षण्णामेवोत्तरं यदि ।
विदधाति स चोत्तीर्णः साधारण्येन गण्यताम् ॥ ८५ ॥

आठ प्रश्नों में से यदि किन्हीं छः का ही उत्तर जो छात्र दे दे तो उसे साधारण रूप से उत्तीर्ण घोषित करें ॥ ८५ ॥

ततोऽप्यल्पोत्तरं कुर्वन् भूयः कृत्वा परिश्रमम् ।
गुरोः सकाशमागत्य पुनर्दद्यात् परीक्षणम् ॥ ८६ ॥

उससे भी कम प्रश्नों का उत्तर देनेवाला छात्र गुरु के पास जाकर फिर उसी ग्रन्थ में परिश्रम करे और फिर वही परीक्षा देवे ॥ ८६ ॥

अध्यापक-परीक्षायामुत्तीर्णः सन् कृतश्रमः ।
राजकीय-परीक्षायां प्रविशेदविशङ्कितः ॥ ८७ ॥

अपने अध्यापक (गुरु) से ली गयी परीक्षा में उत्तीर्ण छात्र परिश्रम कर निर्भय रूप से राजकीय परीक्षा में सम्मिलित होवे ॥ ८७ ॥

आदितो यद्यधीयीत प्रोक्तरीत्या त्वरां त्यजन् ।
न जायेत परीक्षायामनुत्तीर्णस्तु कश्चन ॥ ८८ ॥

पूर्वोक्तरीति से जल्दबाजी को त्याग करते हुए प्रारम्भ से ही यदि अध्ययन करे तो कोई भी छात्र परीक्षा में अनुत्तीर्ण नहीं हो सकता है ॥ ८८ ॥

यदा न कार्यमन्यत् स्यात् तदा पठति कश्चन ।
कश्चित् कार्यान्तरं हित्वा पठने यतते सदा ॥ ८९ ॥

अधीतेस्तु फलं तुल्यं ताबुभावपि काङ्क्षतः ।
लङ्घितुं तुल्यमध्वानं पङ्ग्वपङ्गुजनाविव ॥ ९० ॥

कोई किसी दूसरे काम के न रहने पर पढ़ लेता है और कोई अपने दूसरे काम को छोड़कर हमेशा पढ़ने में लगा रहता है। वे दोनों ही अध्ययन का फल तुल्यरूप से (बराबर) वैसी ही चाहते हैं, जैसे कि समान रास्ते को लँगड़ा और तन्दुरुस्त आदमी समान रूप से पार करना चाहते हैं ॥ ८८-९० ॥

यो लिखत्यथवाऽधीते सतीर्थ्यं परिपृच्छति ।
सुश्लेषयत्यवधृतमुपास्ते नियमाद् गुरुम् ॥ ९१ ॥
अचिरेणैव धीस्तस्य विकाशमधिगच्छति ।
दिवाकर-करव्रातैर्यथैवं नलिनीदलम् ॥ ९२ ॥

जो लिखता या पढ़ता है, साथी को पूछता है, जानी हुई बातों का संग्रह करता है और नियमपूर्वक गुरु की वन्दना करता है—उसकी बुद्धि शीघ्र ही (थोड़े ही दिनों में) विकशित हो जाती है जैसे सूर्य की किरणों से कमलिनी की पंखुड़ियाँ विकशित हो जाती हैं ॥ ९१-९२ ॥

शुश्रूषा, श्रवणं, चैव ग्रहणं, धारणं तथा ।
ऊहापोहार्थविज्ञानं, तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः ॥ ९३ ॥

गुरु की सेवा, उनके शब्दों को ध्यानपूर्वक सुनना, सुनकर ग्रहण करना, स्मरण रखना, तर्क-वितर्क करना और वास्तविक तथ्य को समझना—ये बुद्धि के गुण हैं ॥ ९३ ॥

ग्रन्थाभ्यासो, ग्रन्थमर्म-विज्ञानं, लेखयोग्यता ।
अन्यस्य बोधने दाक्ष्यमन्योक्ताशय-विज्ञता ॥ ९४ ॥

ग्रन्थ का अभ्यास करना, ग्रन्थ के मर्म (गूढ़) को जानना,

लिखने में निपुणता, दूसरों को समझाने की क्षमता, दूसरों का तात्पर्य जानना—॥ ९४ ॥

विनयः, सदसि प्रौढिरचाञ्चल्यमकोपनम् ।
परकीयगुणश्लाघा, स्वमहत्त्वाऽप्रकाशनम् ॥ ९५ ॥

विनीत रहना (नम्र होना), सभा में प्रौढ़ता (निर्भयता), चञ्चल न रहना, क्रोध न करना, दूसरे के गुणों की प्रसंशा करना, अपने महत्त्व को अपने से न कहना—॥ ९५ ॥

अपौनरुक्त्यं, कथने सुष्पष्टाक्षरवाक्यता ।
मधुरप्रियभाषित्वमथ चाऽबहुभाषिता ॥ ९६ ॥

एक ही बात को बार-बार न कहना, एक-एक अक्षर को स्पष्ट करके बोलना, मीठे और प्रिय बातों को कहना, फिर भी ज्यादे न बोलना ॥ ९६ ॥

श्लोकनिर्माण-नैपुण्यं, शीघ्रसुन्दरलेखिता ।
एते धीरगुणाश्छात्रैरर्जनीयः प्रयत्नतः ॥ ९७ ॥

श्लोक बनाने में कुशलता, शीघ्रतापूर्वक सुन्दर अक्षर लिखना ये विद्वान् के गुण हैं, छात्र को चाहिए कि इन गुणों का यत्नपूर्वक ग्रहण करें ॥ ९७ ॥

आदितो विषयं सम्यग् यदि जानाति बालकः ।
अग्रिमग्रन्थपठने स्वयमुत्साहमृच्छति ॥ ९८ ॥

यदि प्रारम्भ से ही बालक पढ़े हुए विषयों को अच्छी तरह जानता रहे तो अगले ग्रन्थ पढ़ने में उसे स्वयं ही उत्साह आ जाता है ॥ ९८ ॥

अजानँस्तु पठन् पश्चादचिरेणैव बालकः ।
अनुत्साहोदयात् पाठमशक्यत्वाच्च मुञ्चति ॥ ९९ ॥

बिना समझकर पढ़ता हुआ बालक पीछे थोड़े ही दिनों में उत्साह से हीन हो जाता है और असमर्थ होकर पढ़ना छोड़ देता है ॥ ९९ ॥

उच्चकक्षाश्रिताच्छात्रान्नीचकक्षासु पाठकाः ।
कुर्वन्ति स्म पुरा यत्नादधीतग्रन्थचिन्तनम् ॥१००॥

पहले, उच्च वर्ग में पढ़ते हुए छात्र से निम्नवर्गीय छात्र यत्नपूर्वक (गुरु से) पढ़े हुए ग्रन्थों का चिन्तन करते थे ॥१००॥

लेखाधारो वृक्षपत्रं लेखनी तृणनिर्मिता ।
मसी च कज्जलमयी स्वहस्तेन विनिर्मिता ॥१०१॥
अनया लेख-सामग्र्या विलेख्य प्रत्यहं शिशुः ।
शास्त्रं पठनं भूरिकालाद् भवति स्म महान् बुधः ॥१०२॥

(प्राचीनकाल में) लिखने का आधार (कागज के स्थान में) पेंड़ के पत्ते (ताल-पत्रादि), तृणविशेष (राड़ी, शरपत, काश इत्यादि) से बनी कलम, काजल की स्याही, जो (सभी) अपने हाथ से बनाये जाते थे। इन लिखने के सामग्रियों (सामानों) से प्रतिदिन लिखकर बहुत दिनों (प्रायः १२ वर्ष) तक शास्त्र पढ़ता हुआ बालक महान् पण्डित हो जाता था ॥ १०१–१०२ ॥

अद्यत्वे लेख-सामग्री सुलभा वर्ततेतराम् ।
स्वस्य नापेक्षितो लेखः समस्तापि हि पुस्तकी ॥१०३॥
मुद्रिता सुन्दराकारा क्रयणेनैव लभ्यते ।
एतत् सौकर्यमद्यत्वे प्रत्युताऽयोग्यताप्रदम् ॥१०४॥

आज-कल लिखने की सामग्री (सामान) सुलभ हो गयी है। (इसके लिए कोई मिहनत नहीं करनी पड़ती है। पाठ्य ग्रन्थ या परीक्षा के लिए प्रश्नोत्तर) अपने से लिखना कोई आवश्यक नहीं, क्योंकि सम्पूर्ण पुस्तक छपी हुई सुन्दर रूप में खरीद कर प्राप्त हो

जाती है। ये सब यद्यपि आजकल की सुविधायें हैं, परन्तु इनसे अयोग्यता बढ़ती है ॥ १०३-१०४ ॥

अवधानं लेखशुद्धि-ग्रन्थाभ्यासश्च यादृशः ।
स्वहस्तविहिते लेखे तथाऽन्यत्र न पुस्तके ॥ १०५ ॥

विषय को पूर्णतया समझना, शुद्ध-शुद्ध लिखना और ग्रन्थ का अभ्यास, ये सब जिस प्रकार अपने हाथ से लिखे ग्रन्थ में होता है वैसा दूसरे (छपे हुए) ग्रन्थ में नहीं ॥ १०५ ॥

पत्रेषु तालीवृक्षाणां गाढ-मस्या प्रयत्नतः ।
लिखितं पुस्तकं स्थायि वर्षाणां बहुलं शतम् ॥ १०६ ॥

ताल-वृक्ष के पत्तों पर गाढ़ी रोशनाई से यत्नपूर्वक लिखा हुआ ग्रंथ सैकड़ों वर्ष तक सुरक्षित रहता है ॥ १०६ ॥

अध्यापको यदि भवेद् बाल-शिक्षा-विधौ पटुः ।
तदैव साध्या तस्य स्याच्छिक्षा बालोपकारिका ॥ १०७ ॥

शिक्षक जब बालक को शिक्षा देने में निपुण हो, तभी उसके शिक्षा से बालक को उपकार हो सकता है ॥ १०७ ॥

अतोऽत्र शिक्षा-सोपाने शिक्षकस्यापि शिक्षणम् ।
बाल-शिक्षोपयोगित्वात् संन्यवेशि विशेषतः ॥ १०८ ॥

इसलिए इस 'शिक्षा-सोपान' में बालक के शिक्षा में उपयोगी होने के कारण शिक्षक को भी शिक्षण (ट्रेनिंग) खासकर दिया गया है ॥ १०८ ॥

लघुव्याकरणं बालः पठित्वा विस्तृतं पठेत् ।
यद्वा न्यायं ज्यौतिषं वा शास्त्रान्तरमथापि वा ॥ १०९ ॥

बालक व्याकरण का छोटा ग्रन्थ पढ़कर बड़ा ग्रन्थ पढ़े अथवा न्याय, ज्यौतिष या अन्य (दूसरा) शास्त्र ही पढ़े ॥ १०९ ॥

लघुभूतं व्याकरणमपठित्वाऽपि वा पठेत् ।
बृहद् व्याकरणं ग्रन्थं मेधावी यदि बालकः ॥ ११० ॥

छोटे व्याकरण (सारकौमुदी या लघुकौमुदी) के विना पढ़े ही, यदि बालक संस्कारी (तेज) हो तो बड़ा व्याकरण (सिद्धान्त कौमुदी या काशिका) ग्रन्थ को पढ़े ॥ ११० ॥

सिद्धान्तकौमुदीं किं वा लघुसिद्धान्तकौमुदीम् ।
पठिष्यता बालकेन पूर्वं पाणिनि-निर्मिता ॥ १११ ॥
अष्टाध्यायी समभ्यस्या सम्पूर्णा शब्दमात्रतः ।
सैषा महोपकाराय परिपाटी पुरातनी ॥ ११२ ॥

भट्टोजिदीक्षित कृत वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी या वरदराज कृत लघुसिद्धान्तकौमुदी जिस बालक को पढ़ना हो उसे पहले पाणिनि की बनायी हुई अष्टाध्यायी (शब्दानुशासन) को (विना अर्थ समझे ही) सम्पूर्ण अभ्यास कर लेना चाहिए। यह आगे चलकर बहुत उपकारक होता है, ऐसी प्राचीन परम्परा है ॥

नोट—यहां से आगे पांच श्लोक नीतिग्रन्थों के हैं, उपयोगी समझकर यहां उपनिबद्ध किये गये हैं। प्राचीन शिक्षाग्रन्थों में भी पुरातन श्लोकों का समावेश देखा जाता है—

पुस्तकेषु च या विद्या परहस्ते च यद्धनम् ।
कार्यकाले समुत्पन्ने, न सा विद्या न तद्धनम् ॥ ११३ ॥

जो विद्या पुस्तक में है (कण्ठस्थ नहीं है) और जो धन दूसरे के हाथों में है ऐसी अपनी भी विद्या और धन समय आने पर कोई काम का नहीं ॥ ११३ ॥

मूर्खता पितृदोषेण गुरुदोषादविज्ञता ।
असद्वृत्तिः सङ्गदोषाज्जन्मदोषाद् दरिद्रता ॥ ११४ ॥

पिता के दोष से मूर्खता, गुरु के दोष से विषय को पूरा-पूरा न जानना, सङ्गति के दोष से (दुर्जन के सम्पर्क से) बुरी आदत और जन्म के दोष से (निर्धन के घर जन्म होने से) दरिद्रता (गरीबी) प्राप्त होती है ।। ११४ ।।

तैलाद् रक्ष, जलाद् रक्ष, रक्ष मां श्लथबन्धनात् ।
मूर्खहस्तात् तथा रक्ष, वदत्येतत्तु पुस्तकी ॥११५॥

पुस्तक कहती है कि तेल से मेरी रक्षा करो, जल से रक्षा करो, ढीले बन्धन से रक्षा करो और मूर्ख के हाथों से मेरी रक्षा करो ।। ११५ ।।

रे रे पुत्रक ! नाऽधीतं मृगनेत्रासु रात्रिषु ।
अतस्त्वं विदुषां मध्ये पङ्के गौरिव सीदसि ।। ११६ ।।

अरे पुत्र ! तू ने अगहन महीने की रातों में नहीं पढ़ा (जाड़े के कारण आलस्य से सोया ही रहा), इसलिए तू विद्वानों के बीच में उसी तरह कष्ट पा रहा है जैसे कीचड़ में फँसी गाय कष्ट पाती है ।। ११६ ।।

प्रदोष-पश्चिमौ यामौ वेदाभ्यासेन तौ नयेत् ।
यामद्वयं शयानस्तु ब्रह्मभूयाय कल्पते ।। ११७ ।।

रात के दो पहर—एक प्रदोष वाला प्रहर (पहला) और दूसरा अन्तिम प्रहर (चौथा) वेद का अभ्यास करता हुआ बितावे और बीच का दो प्रहर सोया हुआ ब्रह्म में लीन होने की कल्पना करे ।। ११७ ।।

(चार प्रहर का दिन तथा चार प्रहर की रात होती है। रात के पहले और चौथे प्रहर पढ़ने का है और तीसरा-चौथा प्रहर सोने का। सोते हुए अपने को इस संसार में सर्वव्यापी (एकमेवाऽद्वितीयम्) ब्रह्म माने। इससे प्रातःकाल उठने पर बुद्धि ताजी हो जाती है और स्वास्थ्य बना रहता है)।

लिखनविधि-विरागः, पुस्तकाऽशोधनं च ।
बहुसुहृदपवृत्तिः[1] प्रक्रिया चातिगुर्वी ॥
श्वशुरकुलनिवासो नित्यचेतोविषादः[2] ।
स्थितिरपि निजगेहे मूर्खताहेतवोऽष्टौ ॥ ११८ ॥

इति मिथिला-जनपदान्तर्गतेसहपुरग्रामवास्तव्य-झाण्डर सं० 'फेकू'
प्रसिद्ध-धर्मनाथशर्मसूनुना महावैयाकरणेन दीनबन्धुझाशर्मणा
प्रणीतं 'वाल-शिक्षासोपान' समाप्तम् ।

मूर्ख होने के आठ कारण हैं—(१) लिखने में मन न लगना, (२) किताब या कापी को शुद्ध न करना, (३) बहुत लोगों से दोस्ती कर लेना, (४) बुरे काम में लगना, (५) काम करने का लम्बा तरीका (जो काम ५ मिनट में होने वाला हो उसे आधे घंटे में करना), (६) ससुराल में वास करना, (७) प्रतिदिन मन को दुखी रखना या चिन्तित रहना और (८) अपने घर पर ही रहना ॥ ११८ ॥

इति मधुबनीजिलान्तर्गत 'दीप' ग्रामनिवासि बुधवाल सं० सच्छ्रोत्रिय
श्री गङ्गानाथ झा के पुत्र नवीनाचार्य, विद्यावारिधि
श्रीशशिनाथझा कृत 'वाल-शिक्षासोपान'
की 'हिन्दी टीका' समाप्त हुई ।

❀ शुभमस्तु ❀

---

१. 'बहुसूहृदनुवृत्तिः' इति पा० । २. 'विह्वलत्वं विषादः' इति पा० ।

बिहार-प्रथमा-व्याकरणम्

(लघुकौमुदी-विसर्गसन्ध्यन्त सहित)

संपादक—पं० शशिशेखर झा

कामेश्वरसिंह सं० विश्वविद्यालय; दरभंगा

प्रथमा परीक्षा (वर्ग ७–८) में निर्धारित 'संस्कृत व्याकरणम्' के विषयों को ध्यान में रखकर अल्पवयस्क बालक-बालिकाओं के लिए सरल सुबोध मनोवैज्ञानिक शब्दावली में इस पुस्तक की रचना हुई है। इसमें सर्वप्रथम पाठ्य निर्धारित विसर्गसन्ध्यन्त लघुकौमुदी की संस्कृत-हिन्दी व्याख्या में बालकोपयोगी शब्दसाधुत्व प्रकार उसके बाद परीक्षापाठ्य शब्दों तथा धातुओं की सविमर्श रूपावली तथा कृदन्त, स्त्रीप्रत्यय, कारक, समास और तद्धित प्रत्ययों का भी परीक्षापाठ्यानुरूप संक्षिप्त तथा सरलतम शब्दों का सोदाहरण ज्ञान कराया गया है। अल्पवयस्क बालक बालिकाओं को शनैः शनैः संस्कृत शब्दों का ज्ञान कराने के लिए पुस्तक में १ से १० पाठ हैं तथा प्रति पाठ के अन्त में अभ्यासार्थ प्रश्न भी लिखे गए हैं जो बच्चों के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे। पुस्तक के परिशिष्ट में सन्धिप्रकरण, लिंगानुशासन, व्यवहारोपयोगी अकारादि संस्कृत-हिन्दी शब्द कोश, अव्ययार्थ माला आदि बालकोपयोगी बहुत से विषय दिये गये हैं। ४–५०

रघुवंशमहाकाव्यम्

'मल्लिनाथी' 'इन्दुमती' संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतम्

सम्पादक—पं० रामचन्द्र झा

रघुवंश की आधुनिक जो भी टीकायें पहले निकल चुकी थीं वे सब मल्लिनाथी टीका का पृष्ठपेषण मात्र करती थीं। प्रस्तुत संस्करण की मल्लिनाथी सहित 'इन्दुमती' टीका में ग्रन्थाशय को ध्यान में रखकर पूर्वापर सन्दर्भपूर्वक सरल-सुबोध शब्दों में हिन्दी पर्याय; व्याकरण, समास, अन्वय विग्रह, कोश आदि के सहित व्याख्या की गयी है, यह इस संस्करण की सबसे बड़ी विशेषता है। परीक्षा में बार-बार पूछे गये या पूछने योग्य सभी आलोचनात्मक प्रश्नों के उत्तर भी ग्रन्थारंभ में प्रतिसर्ग के पर्यालोचन में प्रश्नोत्तर के रूप में लिखे गये हैं।

सर्ग १ से ५, प्रत्येक सर्ग २–५०, ६–७ सर्ग ५–००

प्राप्तिस्थानम्—कृष्णदास अकादमी, पो० बा० ११८, वाराणसी–२२१००१